REG. NO. RAJHIN /2002/14707

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

चोखी खेती

फरवरी 2025

नींबू वर्गीय फलों में लगने वाले कीटों का समन्वित प्रबंधन

डॉ. बी. एस. मिठारवाल[1] , डॉ. सुरेंद्र कुमार यादव[2] , माया चौधरी [3], बजरंग डूडी [4], मुकेश जाखड़[5]

भारत में उगाए जाने वाले सभी फलों में नींबू वर्गीय फलों का महत्वपूर्ण स्थान है। संतरा, नींबू, किन्नू, मौसमी, माल्टा, चकोतरा आदि भारत में उगाई जाने वाली मुख्य नींबू वर्गीय प्रजातियां हैं। यह विटामिन ए, सी और खनिज पदार्थों का मुख्य स्रोत है, इन फलों पर कीट बहुतायत में हानि पहुंचाते हैं, जिससे इनकी उपज भी प्रभावित होती है। यदि उचित समय पर इन कीटों को पहचान कर नियंत्रित कर लिया जाए तो उपज में होने वाले नुकसान को समय पर रोका जा सकता है। नींबू वर्गीय फलों के प्रमुख कीटों पर विस्तारपूर्वक विवरण निम्न प्रकार है।

नींबू वर्गीय फलों के प्रमुख कीट और उनके नियंत्रण के उपाय:

1. छाल भक्षक कीट : यह कीट नींबू के अतिरिक्त आम, जामुन, अमरूद, बेर, अनार और लीची को भी क्षति पहुंचाता है। यह आकार में बड़ा व पंखों वाला कीट है। इस कीट की मादा पंखों के फैलाव के साथ 4 सेंटीमीटर लंबी तथा इसका नर 3 सेंटीमीटर लंबा होता है। इसके पंख हल्के धूसर व हल्के लाल ईंट के रंग के होते हैं, इन पंखों पर गहरे भूरे रंग के बिंदु नुमा दाग भी पाए जाते हैं। इसके व्यस्क में सिर और वक्ष भाग खुरदरा होता है। इस किट की सूंड़ी अवस्था 50 से 60 मिलीमीटर लंबी हलके भूरे रंग वाली व गहरे रंग के सिर वाली होती है।

क्षति के लक्षण : सामान्यतः यह पुराने एवं अव्यवस्थित उद्यानों में पाए जाने वाला कीट है, जो पेड़ों की छाल को खाता है। मई जून के माह में इस कीट की मादा छाल के नीचे अंडे देती है, जहाँ से सूंडिया निकलकर तने में छेद करके प्रवेश कर जाती हैं। इस कारण से पानी व भोजन का संचार करने वाली वाहिकाएं छतिग्रस्त हो जाती हैं जिससे पौधों की टहनियां सूख जाती हैं, इन टहनियों को काटकर तने से अलग कर देना चाहिए। इस कीट का लार्वा एक वृक्ष में लगभग 16 छेद बना सकता है। जब इस कीट का प्रकोप ज्यादा बढ़ जाता है तो संपूर्ण पौधों के सूखने की संभावना होती है। जिस स्थान पर ये छेद बनाकर घुसता है उस स्थान पर लकड़ी का बुरादा व अपने मल पदार्थ के साथ टेढ़ी मेढ़ी रिबन के समान आकृति भी बनती हैं।

नियंत्रण :

1. सबसे पहले प्रभावित टहनियों व शाखाओं को काटकर अलग कर दें।
2. इसके नियंत्रण के लिए कीट द्वारा बनाई गई सुरंग में 5 मिली पेट्रोल, डाइक्लोरोवास या केरोसिन तेल

1. सहायक आचार्य), 2. सहायक आचार्य, 3. विद्या वाचस्पति छात्र, 4. स्नातकोत्तर छात्र, 5. विद्या वाचस्पति छात्र, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर।

डालकर रूई को इसमें भिगोकर साइकिल के तार से सुरंग के अंदर डाल दें तथा गीली मिट्टी से छेद तुरंत बंद कर दें ताकि गिडार अंदर की अंदर ही मर जाए।

3. बाग में लगे हुए अन्य ऐसे फल वृक्ष जो इस कीट से प्रभावित होते हैं उन्हें भी उपचारित करें।

2. नींबू का साईला : नींबू वर्गीय फलों में लगने वाले कीटों में साइला सबसे अधिक हानि पहुंचाता है। मार्च–अप्रैल माह जिस समय नींबू में फूल व फल लगते हैं, इस कीट का आक्रमण भयंकर होता है। यह बहुत छोटे आकार का कीट है, जिसकी लंबाई औसतन 3 मिमी होती है। इस किट के पंख अर्ध पारदर्शी व झिल्लीदार होते हैं। यह गुलाबी भूरे रंग का कीट है जिसके पंख पीछे की तरफ ऊपर उठे हुए होते हैं। इस कीट के पिछले पंख आगे वालों की अपेक्षा छोटे और पतले होते हैं। इस किट की नीम्फ अवस्था चपटे व हल्के पीले रंग की होती है।

क्षति के लक्षण : इस कीट के निम्फ व प्रौढ़, पत्तियों और टहनियों से रस चूस कर पौधों को क्षति पहुंचाते हैं। यह हानिकारक अवस्थाएं नई पत्तियों व टहनियों पर इकट्ठे होकर नई पत्तियों, कलियों व टहनियों की वृद्धि को रोक देते हैं। पौधों से रस चूसकर यह कीट उस स्थान पर एक जहरीला पदार्थ डाल देता है जिसके कारण से पौधा मुरझा कर सूख जाता है तथा फल पकने से पहले ही झड़ कर गिर जाते हैं। इसके साथ–साथ फलों के रस में भी कड़वापन उत्पन्न हो जाता है। यह कीट चिपचिपा पदार्थ छोड़ता है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी अवरुद्ध हो जाती है। जिससे पौधे भोजन नहीं बना पाते और बोने रह जाते हैं। इसके प्रकोप से कभी–कभी पूरी फसल ही समाप्त हो जाती है। इसके साथ ही यह किट ग्रीनिंग वायरस का भी वाहक होता है। कीट का अत्यधिक प्रभाव होने पर फल आकार में छोटे रह जाते हैं जिनमें रस बहुत ही कम मात्रा में होता है।

नियंत्रण : इस किट के नियंत्रण के लिए नई पत्तियाँ आते ही छिड़काव करना अति आवश्यक है। इसके नियंत्रण के लिए डायमिथोएट 30 ई. सी. 1 से 1.5 मिली तथा इमिडाक्लोप्रिड 0.3 एम.एल. प्रति लीटर पानी की दर से पौधों पर छिड़काव करते हैं।

3. नींबू की तितली : इस किट की तितली की लंबाई 30 मिमी तथा पंख फैलाव पर 80 मिमी से 100 मिमी होती है। यह एक काले, नारंगी व पीले रंग की रंगीन तितली होती है। इसके पंखो पर पीले रंग के धब्बे होते हैं तथा पिछले पंखो पर लाल रंग के अंडाकार धब्बे भी होते हैं। इसकी शुरुआती लट चिड़िया की बीट की तरह दिखाई देती है तथा परिपक्व लट हरे पीले रंग की होती है जो लम्बाई में लगभग 35 मिमी होती है। इस कीट का ऐंटिना काले रंग का होता है जिसके अंतिम सिरों पर एक समुच्य सरचना होती है।

क्षति लक्षण : लट अवस्था इस किट की सबसे हानिकारक अवस्था होती है। जबकि तितली पौधों में किसी भी प्रकार की छति नहीं पहुंचाती है। इस कीट की लट पत्तियों को खाकर नुकसान पहुंचाती है, इसका रंग पत्तियों की तरह हो जाने से यह दिखाई नहीं पड़ती और कोमल पत्तियों को खाती रहती है जिससे पौधों की बढ़वार रुक जाती है। पत्तियों के अलावा कभी–कभी यह कोमल तनों को भी खाकर छति पहुँचाती है। जो पौधे नर्सरी में होते हैं, उन्हें भी यह कीट अधिक प्रभावित करता है। यह किट मार्च से नवंबर तक सक्रिय रहता है तथा इसका प्रकोप पौधों पर अगस्त से सितंबर के माह में बढ़ जाता है। कभी–कभी इस कीट का अधिक प्रकोप होने पर पौधों में अफलन की समस्या हो जाती है।

नियंत्रण :

1. इस किट को नियंत्रित करने के लिये इसकी लट्टों को हाथ से एकत्रित करके कीटनाशक मिले पानी में डालकर मारा जा सकता है।

2. इसकी लट्टों के नियंत्रण के लिए 1000 से 1200 मिली क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या 100 ग्राम इमामेक्टिन बेंजोएट या 73 ग्राम स्पिनोशिड की मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से पौधों पर छिड़कते हैं।

3. नीम गिरी 3 प्रतिशत के छिड़काव से भी इस किट को नियंत्रित किया जा सकता है।

पशुओं को सर्दियों में होने वाली बीमारियां एवं उपचार

मनोज कुमार[1], सुभाष यादव[1] एवं डॉ. सिद्धार्थ मिश्रा[2]

हमारे देश में खेती के साथ पशुपालन मुख्य सहायक व्यवसाय है। पशु की उत्पादन क्षमता को तापक्रम काफी प्रभावित करता है इसलिए सर्दियों के मौसम में पशुओं को उचित देखभाल की आवश्यकता होती है, वरना शरद ऋतु में पशुओं में बीमारियों होने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है, इसलिए इस ऋतु में होने वाले रोगों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है ताकि समय पर उनके रोकथाम के उपाय किये जा सकें। पशु के शरीर का कोई भी भाग या अंग अथवा संपूर्ण शरीर सामान्य रूप से कार्य नहीं करता है तो वह पशु रोग ग्रस्त माना जाता है। इनमें कुछ रोग तो ऐसे होते हैं जो सामान्य देखभाल, रख–रखाव तथा आहार पर नियंत्रण रखने से ठीक हो जाते हैं। सर्दियों का समय ऐसा है जिसमें सभी पशु इससे प्रभावित होते है और इसे रोकना पूर्णतया सम्भव नहीं होता है जबकि कुछ बीमारियां इस मौसम में सामान्य होती हैं, जिनको पूरी सर्दियों में पशुओं में देखा जाता है।

पशुओं को सर्दी से बचाने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :–

पशुशाला की बनावट व आवास व्यवस्था :–

आमतौर पर दिसम्बर–जनवरी महीने में ठण्डी हवाओं के चपेट में आने से पशु बीमार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में पशुओं को सीधे ठण्डी हवा के प्रकोप से बचाना चाहिए। इसके लिए पशुओं को जहां बांधा जाता हैं, उस आवास के द्वार पर बोरे–पट्टी लटका देनी चाहिए। टीन शेड से निर्मित पशु आवास को मक्के या ज्वार की कड़बी या घास–फूंस के छप्पर से चारों ओर से ढक देना चाहिए। पशुशाला की लंबाई पूर्व–पश्चिम दिशा में होनी चाहिए। यदि फर्श पक्का हो तो चारा, बाजरे के तूतड़े, धान की पराली, गन्ने की सूखी पत्तियां आदि काम में ले सकते हैं। फर्श कच्चा होने पर समय–समय पर ऊपर की मिट्टी को हटाकर खेत में डाल देनी चाहिए तथा उसकी जगह साफ एवं सूखी मिट्टी डालनी चाहिए। बिछावन के लिए बालू मिट्टी अच्छी रहती है। पशुशाला के उत्तरी दिशा के पेड़ो को छोड़कर बाकी दिशाओं के पेड़ों की छंटाई कर देनी चाहिए, ताकि सूरज की रोशनी पशुशाला पर अधिक समय तक रह सके ।

सर्दी के लक्षण :–

1. पशु सुस्त, थका हुआ सा बैठा रहना।
2. आंखों से पानी बहना।
3. पशु की नाक से पानी और बलगम का बहना।
4. पशु का जुगाली न करना।
5. खान–पान में कमी या बिल्कुल ही नहीं खाना।
6. दुग्ध उत्पादन में कमी।
7. संक्रमण होने पर शरीर के तापमान में वृद्धि होना।

ठण्डी हवा से बचाव :–

सर्दी के मौसम में अधिकतर उत्तरी हवा चलती है। इस कारण पशुशाला की उत्तरी दीवार पूरी तरह पैक होनी चाहिए। कच्चे छप्पर होने की दशा में उन पर खींप, सणियां आदि की एक मजबूत परत और लगा दें ताकि ठंडी हवा से बचाव हो सके। ठण्डी हवा चल रही हो तो उस समय पशुओं के पास कंडे की आग जलाकर अजवाइन का धुआं करना लाभदायक रहता है। अधिक सर्दी के दिनों में जूट की बोरी का झूल बनाकर पशुओं के शरीर पर डाल देना चाहिए तथा झूल पशु की गर्दन से पूंछ तक लम्बा तथा दोनों तरफ से लटका हुआ होना चाहिए। झूल को दिन में उतारकर धूप में सुखा देना चाहिए ताकि उसमें पेशाब, आदि की सीलन सूख जाये।

पशुओं का आहार प्रबंधन :–

पशुओं को संतुलित आहार देना चाहिए। सूखे चारे के साथ हरा चारा व दाना पशु के उत्पादन के अनुसार देना चाहिए। पशु को अधिक ऊर्जा

1. विद्या वाचस्पति छात्र, पशु उत्पादन विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर – 313001 2. आचार्य, पशु उत्पादन विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर – 313001 ईमेलः– manojkct93@gmail.com

पैदा करने वाले अवयव जैसे गुड़, आदि आहार खिलाना चाहिए, जिससे पशु का शरीर गर्म रहता है। पशुओं को स्वच्छ एवं ताजा पानी पिलाना चाहिए तथा ज्यादा ठण्डा पानी नहीं पिलाना चाहिए।

सर्दी लगने पर पशुओं का प्राथमिक उपचार :–

ऐसी दशा में निम्न घरेलू उपचार करना चाहिए –

अजवाइन	– 50 ग्राम,
धनियाँ	– 25 ग्राम
मेथी	– 25 ग्राम
साजी	– 2 ग्राम
पानी	– 0.5

अजवाइन, धनियाँ व मेथी कूटकर पानी में उबालें। कुछ ठण्डा होने पर साजी मिला दें तथा हल्का गर्म रहने पर पशु को पिलाने से आराम मिलता है। भेड़–बकरियों तथा बछड़े–बछियों में इसकी चौथाई मात्रा काम में लेवे।

पशुओं को सर्दियों में होने वाली बीमारियाँ :–

पशुओं को सर्दियों में होने वाली बीमारियाँ व उनका उपचार इस प्रकार है–

निमोनिया :– सर्दी के दिनों में दुधारू पशुओं विशेषकर नवजात बच्चों में निमोनिया एक गम्भीर रोग है। यह बीमारी पशुओं को दूषित वातावरण में बन्द कमरे में रखने से होती है। यह जीवाणु एवं विषाणु संक्रमण रोग है जो कोराइनी बैक्टेरिया, स्ट्रेप्टोकोलाई, स्ट्रेप्टोकोलाई पस्चुरेल, माईबेक्टेरिम आदि द्वारा फैलाया जाता है।

लक्षण :– निमोनिया से ग्रसित पशुओं की नाक बहती हैं। पशु सही से सांस नहीं ले पाता तथा हांफता रहता है। वह लंबी सांस खींचता है तथा सांस लेते समय घङघङाहत की आवाज आती हैं। पशु खाना कम कर देता है तथा अधिक गंभीर स्थिति में खाना छोड़ देता है। पशु सुस्त व दुर्बल होता रहता हैं अधिकतर पशुओं में खांसी भी रहती है। शरीर का तापमान बढ़ जाता है तथा दुग्ध उत्पादन कम हो जाता हैं।

उपचार :–

- इस रोग में पशु की छाती पर सरसों के तेल में 5 प्रतिशत तारपीन का तेल और 1 प्रतिशत कपूर मिलाकर मालिश करने से लाभ होता है।
- एक बाल्टी में अच्छा गरम पानी लेकर सूखी घास रख दीजिए। उसके बाद रोगी पशु के चेहरे को किसी बोरे, टाट या मोटी चादर से इस प्रकार ढकें कि नाक और मुँह ही खुला रहे। गरम पानी वाली बाल्टी को पशुओं के मुँह के नीचे लगभग एक फुट के अंतर पर रखकर पानी पर रखी घास पर तारपीन या मेंथा का तेल बूंद–बूंद करके डालें। इससे तारपीन या मेथा का तेल भाप में बदलकर श्वांस लेने के साथ रोगी पशु के फेफड़ों में पहुँचकर लाभ पहुँचाता है।
- रोगी पशुओं को 20 मि.ली मेंथा का तेल, 20 मि.ली यूकेलिप्टस का तेल, 20 ग्राम कपूर तथा 20 ग्राम सौंठ को मिलाकर पशु को धूणी देने से लाभ होता है, यह धूणी गर्म पानी में डालकर या जलते हुए उपले पर डाल कर पशु को सुंघा सकते हैं।
- निमोनिया के रोगी को औषोधियों का जलीय मिश्रण पिलाने से बीमारी बिगड़ने की संभावना रहती है। इसलिए उन्हें खिलाने वाली औषधि को शीरे में मिलाकर चटाना चाहिए। पशु चिकित्सक की राय शीघ्र लेकर उपचार करना चाहिए।

सर्दी, जुखाम, खांसी :– ये रोग पशुओं को सर्दियों में खुली जगह या किसी ठंडी जगह पर बांधने से अक्सर होते हैं।

लक्षण :– पशु को सांस लेने में तकलीफ महसूस होती है. सांस लेते समय नाक से या गले में से आवाज आती है. नाक में से पानी गिरता रहता है। थोड़ा–थोड़ा बुखार रहता है तथा खांसी भी आती है।

उपचार :–

- ऐसी बीमारियों में पशु की नाक के अन्दर की कोमल चमड़ी सूज जाती है। ऐसे समय में इलाज न किया जाये तो पशु के फेफड़ों में सूजन आ सकती है और पशु निमोनिया जैसे भयंकर रोग का शिकार हो सकता है। ऐसे रोग में निम्न उपचार करना चाहिए–

अमोनियम कार्बोनेट–30–60 ग्राम
पोटेशियम क्लोराइड–30–60 ग्राम

मुलैठी	–	30 ग्राम
गुड़	–	60 ग्राम

इन चीजों का मिश्रण बनाकर पशु को दिन में दो या चार बार चटाना चाहिए। ऐसा चार–पांच दिनों तक करना आवश्यक है। इसके साथ–साथ पशु को तारपीन का तेल

(एक तौला) पानी में मिलाकर आगे 10–15 मिनट रखें ताकि हवा मिश्रित भाप पशु सांस द्वारा खींच सके। ध्यान रखें कि पशु इस बीच पानी नहीं पीयें

सफेद दस्त/अतिसार (काफ स्कोर) :– यह 2–5 दिन की उम्र वाले नवजात बछडे–बछड़ियों में अधिकांशत "ईशचेरीचिया कोलाई" नामक जीवाणु के कारण होता है। यह रोग तब उत्पन्न होता है जब नवजात शिशुओं को जन्म के तुरन्त बाद खीस न पिलाई गई हो या किसी कारणवश बछड़ों में रोग अवरोधक शक्ति कम हो गई हो। इनको बहुत कम या अधिक दूध या आहार पिलाने व खिलाने तथा गंदे बर्तनों में दूध देने से दस्त लग जाते है। अनियमित एवं दूषित आहार, पेट में कृमि तथा जीवाणुओं तथा विषाणुओं से संक्रमण के कारण यह रोग होता है।

लक्षण :– पशुओं को दस्त होना स्वतः कोई अलग रोग न होकर अनेक बीमारियों का लक्षण हो सकता है। अपच, अजीर्ण, पोका, गलघोंटू तथा पेट में परजीवी कीड़ों की उपस्थिति से भी पशुओं को दस्त आने लगते हैं। आंव खून मिला हुआ अथवा पानी जैसा पतला गोबर करना, पिछले घड़ तथा पूंछ का इससे भर जाना, खान–पान में अरुचि, बढ़ती हुई कमजोरी तथा प्यास लगना आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं।

उपचार :– पेट में कृमि का सन्देह होने पर पशु को पहले एक खुराक पिपराजीन युक्त कृमिनाशक औषधि पानी में घोलकर पिलाएँ।

1. पिपरेक्स –
बड़े पशु– 45 से 70 ग्राम
छोटे पशु– 3 से 10 ग्राम अथवा
नील वर्म –
बड़े पशु – 10 से 15 ग्राम
छोटे पशु– 2 से 5 ग्राम
2. सल्फा बोलस या टेरामाइसिन की बड़ी गोली
बड़े पशु – 2 से 3 गोली
छोटे पशु– 1 से 1.5 गोली

खुरपका–मुँहपका रोग :– यह रोग मुख्यतः गाय, भैंस, बकरी एवं शुकर जाति के पशुओं में होने वाला विषाणुजनित अत्यन्त सक्रांमक, छूलदार एवं अति व्यापी रोग है। छोटी उम्र के पशुओं में यह रोग जानलेवा भी हो सकता है। संकर नस्ल के पशुओं में यह रोग अत्यन्त तीव्रता से फैलता है। इस रोग में मृत्युदर कम होती है लेकिन दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन बहुत कम हो जाता है।

लक्षण :– पशु को 104–107 डिग्री फारेनहाइट तक तेज बुखार, मुँह, मसूड़े व जीभ पर छाले. लगातार लार का गिरना, होठों से चिपचिपाहट की आवाज, होठों को सिकुड़ना, पैर का लंगड़ाना, पैर के छालों में जख्म एवं कीड़े पड़ना। दुधारू पशु के थनों एवं अयन में छाले पड़ने से थनैला रोग का होना। कुछ पशुओं में हांफने की बीमारी होना दुधारू पशुओं में दूध उत्पादन में एकदम कमी।

रोकथाम व बचाव :–

- पशुओं में प्रतिवर्ष मई–जून के महीने (वर्षा ऋतु से पहले) में नियमित रूप से टीकाकरण करावें।
- यह रोग महामारी के रूप में फैलता है अतः रोगी पशु को स्वस्थ पशु से तुरन्त अलग करें।
- पशु को बांधकर रखे व घुमने फिरने ना दें।
- बीमार पशु के खाने–पीने का प्रबंध अलग ही करें।
- रोगी पशुओं को नदी, तालाब, पोखर आदि में पानी न पीने देवें।
- रोगी पशु को सम्भालने वाले व्यक्ति को बाड़े से बाहर आने पर हाथ–पैर साबुन से अच्छी तरह से घो लेने चाहिए।

उपचार :–

- मुँह एवं खुर के घावों की प्रतिदिन सुबह–शाम फिटकरी या लाल दवा के हल्के घोल से सफाई करें।
- घाव में कीड़े पड़ने पर फिनाइल तथा मीठे तेल की बराबर मात्रा मिलाकर लगायें।
- फिनाइल तथा मीठा तेल उपलब्ध न होने पर नीम के पत्ते उबालकर ठण्डे किये पानी से जख्म साफ करें।
- छालों को सड़न से बचाने के लिए पशुओं को पेनेसिलिन, म्युनोमाइसिन अथवा ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन का मांसपेशी में इंजेक्शन लगवायें।
- इस बीमारी में पशु कुछ भी खा नहीं पाता, अतः उसे हरे चारे व गुड़ के साथ चावल की भूसी मिलाकर खिलायें। आहार जो भी खिलाया जावे वह पौष्टिक एवं मुलायम हो।

संरक्षित खेती, पर्यावरण अनुकूल और तकनीकी नवाचारों के साथ कृषि में सुधार

राजेश कुमार[1], प्रशांत कौशिक[2], सतपाल सिंह[3], विशाल गोयल[4]

संरक्षित खेती, कृषि के क्षेत्र में एक अभिनव और सतत समाधान के रूप में उभरी है, जिसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपनाने से इसके प्रभाव और स्थिरता में महत्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है। इस दृष्टिकोण में अनुसंधान, तकनीकी नवाचार, और डेटा विश्लेषण का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आइए, इसे विस्तार से समझते हैं :

1. अनुसंधान और विकास

संरक्षित खेती के क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान और नए तकनीकी समाधान आवश्यक हैं, जो न केवल अधिक प्रभावी हों, बल्कि पर्यावरण के अनुकूल भी हों। कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों को मिलकर ऐसे नवाचारों पर काम करना चाहिए, जिनसे किसानों को सही और उपयुक्त समाधान मिल सके। विशेषकर, फसल अवशेषों के विघटन, पोषक तत्वों की उपलब्धता, और पर्यावरणीय प्रभावों पर अनुसंधान महत्वपूर्ण हैं।

2. उन्नत तकनीकों का उपयोग

संरक्षित खेती में उन्नत तकनीकों का इस्तेमाल इसकी उत्पादकता और कुशलता को कई गुना बढ़ा सकता है। ऑटोमेटेड सिंचाई प्रणाली, सेंसर, और स्मार्ट तकनीकों के उपयोग से फसल की वास्तविक स्थिति पर निगरानी रखना आसान हो जाता है। ये तकनीकें किसानों को समय पर आवश्यक निर्णय लेने में सक्षम बनाती हैं, जिससे फसल की वृद्धि और उत्पादन में सुधार होता है।

3. डेटा एनालिटिक्स का महत्व

डेटा एनालिटिक्स की मदद से संरक्षित खेती को अधिक वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है। यह तकनीक किसानों को फसल की स्थिति, मिट्टी की गुणवत्ता, और पर्यावरणीय कारकों के बारे में वास्तविक समय में जानकारी प्रदान करती है, जिससे निर्णय प्रक्रिया में सुधार होता है। सही पोषक तत्व प्रबंधन के साथ फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता में वृद्धि होती है।

4. सतत कृषि प्रथाएँ

संरक्षित खेती को स्थिर और प्रभावी बनाने के लिए सतत कृषि प्रथाओं को अपनाना आवश्यक है। ये प्रथाएँ मिट्टी की संरचना को मजबूत करती हैं, जल स्रोतों की बचत करती हैं, और पर्यावरणीय दबावों को कम करती हैं। सतत प्रथाओं के माध्यम से उत्पादन की गुणवत्ता और स्थिरता दोनों में सुधार होता है, जिससे किसानों को दीर्घकालिक लाभ होता है।

5. सामुदायिक सहभागिता और सहयोग

संरक्षित खेती को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए सामुदायिक सहभागिता अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामुदायिक सहयोग से किसानों को आवश्यक संसाधन, जानकारी और समर्थन मिलता है, जो उन्हें संरक्षित खेती को अपनाने में मदद करता है। किसान संगठनों और सहकारी समितियों का भी इसमें अहम योगदान है, क्योंकि वे किसानों के बीच सहयोग बढ़ाने और संसाधनों के साझा उपयोग में सहायक होते हैं।

6. सरकारी योजनाओं का समर्थन

सरकार द्वारा संचालित योजनाएँ जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, बायोगैस योजना, और जैविक खेती प्रोत्साहन योजनाएँ संरक्षित खेती के विकास में सहायक हो सकती हैं। ये योजनाएँ किसानों को आर्थिक सहायता, तकनीकी समर्थन, और सब्सिडी प्रदान करती हैं, जिससे संरक्षित खेती को अपनाना आसान हो जाता है।

7. शिक्षा और जागरूकता

संरक्षित खेती के महत्व को समझाने के लिए किसानों के बीच शिक्षा और जागरूकता बढ़ाना जरूरी है।

1. कृषि विज्ञान केंद्र, पानीपत, 2. कृषि विज्ञान केंद्र, कैथल, 3. कृषि विज्ञान केंद्र, यमुनानगर, 4. चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएँ, और जागरूकता अभियानों के माध्यम से किसानों को नई तकनीकों और तरीकों के बारे में अवगत कराना चाहिए।

8. संरक्षित खेती के उदाहरण

भारत में कई सफल उदाहरण हैं, जहाँ संरक्षित खेती को अपनाकर किसानों ने अपनी कृषि प्रणाली को सुदृढ़ किया है।

–पश्चिम बंगाल की बायोगैस परियोजनाएँ : यहाँ पर बायोगैस परियोजनाओं के माध्यम से ऊर्जा उत्पादन किया जाता है, जो न केवल ऊर्जा की बचत करती हैं बल्कि फसल अवशेषों का प्रभावी उपयोग भी करती हैं।

–मध्य प्रदेश की कंपोस्टिंग पहल : सामूहिक कंपोस्टिंग योजनाओं से जैविक उर्वरक का उत्पादन हुआ है, जिससे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम हुई है।

–महाराष्ट्र की मल्चिंग तकनीक : मल्चिंग के माध्यम से जल संरक्षण और मिट्टी की उर्वरता में सुधार हुआ है, जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई है।

–गुजरात की ग्रीनहाउस तकनीकः ग्रीनहाउस तकनीक ने किसानों को नियंत्रित वातावरण में फसल उगाने की सुविधा दी है, जिससे उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में सुधार हुआ है।

– कर्नाटक की हाइड्रोपोनिक खेती : हाइड्रोपोनिक खेती से जल संरक्षण और अधिक उत्पादन प्राप्त हुआ है।

9.संरक्षित खेती के लिए सिफारिशें

संरक्षित खेती को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की जाती हैंरू

– प्रशिक्षण और शिक्षा : किसानों को संरक्षित खेती की आधुनिक तकनीकों पर प्रशिक्षित करना चाहिए, ताकि वे सही तरीके से इसका उपयोग कर सकें।

– आर्थिक प्रोत्साहन : किसानों को संरक्षित खेती अपनाने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन, जैसे सब्सिडी और ऋण सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए।

– संयुक्त प्रयास : किसान, शोध संस्थान, और सरकारी एजेंसियाँ मिलकर इस प्रक्रिया को और अधिक व्यापक बना सकती हैं।

– तकनीकी सहायता : किसानों को उन्नत तकनीकों और उपकरणों की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए, जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सके।

10. निष्कर्ष

संरक्षित खेती कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतीक है, जो न केवल उच्च उत्पादन और बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करती है, बल्कि पर्यावरण की रक्षा और जल संरक्षण में भी मदद करती है। इसके माध्यम से किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है और कृषि में स्थिरता प्राप्त होती है। हालांकि, इसकी सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण, और सामुदायिक सहभागिता आवश्यक है। संरक्षित खेती को प्राथमिकता देते हुए इसे व्यापक रूप से अपनाने के लिए किसानों, शोध संस्थानों, और सरकारी संगठनों को मिलकर काम करना चाहिए। इससे कृषि प्रणाली को और अधिक स्थिर और सशक्त बनाया जा सकता है।

पत्रिका में प्रकाशित आलेख/ विचार लेखकों के अपने हैं।

सरसों की फसल में रोग और कीटों का नियंत्रण करने के उपाय

रामावतार यादव[1] केशव मेहरा[2] दुर्गा सिंह[3], मदन लाल रैगर[4], मुकेश चौधरी[1] और रितु शर्मा[5]

सरसों रबी की प्रमुख फसल है, जिसका भारत की अर्थव्यवस्था में विशेष योगदान है, सरसों की फसल किसानो के लिए बहुत लोकप्रिय होती जा रही है, सरसों की बुवाई हो गई है, सरसों की फसल को कीटों और रोगों से काफी नुकसान पहुंचता है. जिससे इसकी उपज में काफी कमी हो जाती है और किसानों पर आर्थिक बोझ बढ़ जाता है। अगर समय रहते इन रोगों और कीटों का नियंत्रण कर लिया जाये तो सरसों के उत्पादन में बढ़ोतरी की जा सकती है।

फसल के मुख्य कीट और रोगः

तना गलन रोग, झुलसा रोग, सफेद रोली रोग और तुलासिता रोग सरसों के मुख्य रोग हैं. सरसों का यह रोग बहुत ही महत्वपूर्ण है और इस रोग के लगने से उत्पादन में कमी हो जाती है. जबकि चौंपा (मोयला) कीट, पेन्टेड बग कीट, आरा मक्खी कीट सरसों के मुख्य नाशीकीट हैं।

1. सरसों का सफेद रोली रोगः यह सरसों का अति भयंकर रोग है। यह बीज व भूमि जनित रोग है। इस रोग के कारण बुवाई के 30–40 दिनों के बाद पतियों की निचली सतह पर सफेद रंग के ऊभरे हुए फफोले दिखाई देते हैं। फफोलों की ऊपरी सतह पर पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। उग्र अवस्था में सफेद रंग के ऊभरे हुए फफोले पत्तियों की दोनों सतह पर फैल जाते हैं। फफोलों के फट जाने पर सफेद चूर्ण पत्तियों पर फैल जाता है। पीले रंग के धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को पूरी तरह से

नियंत्रणः

- सरसों की बुवाई अक्टूबर के पहले पखवाड़े में करें।
- बीजों को जैव–नियंत्रक ट्राइकोड्रर्मा पाउडर की 8–10 ग्राम प्रति किलोग्राम या फफूंदनाशी मेटालेक्सिल (एप्रोन 36 एस.डी) की 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करे।
- फसल बुवाई के 55–60 दिनों बाद या रोग के लक्षण दिखाई देने पर रिडोमील एम.जेड 2 प्रतिशत का छिड़काव करे, आवश्यकता पड़ने पर 10 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव को दोहराएं।

2. सरसों का पौध आर्द्र–गलन रोगः इस रोग का प्रकोप पौधों की भूमि सतह या भूमि के अन्दर वाले भाग पर कवक के आक्रमण होने से जड़ पर जल सिक्त धब्बे बनकर तनको कमजोर कर देते हैं, जिससे तना सूख जाता है। अंत मे पौधा भूमि पर गिर जाता है।

नियंत्रणः

- बीज को मेटालेक्सिल (एप्रोन 36 एस. डी) की 6 ग्राम या थायरम–75 डब्लू.पी 3 ग्राम या ट्राइकोड्रर्मा पाउडर 8–10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।
- खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 12 प्रतिशत मेन्कौजेब 63 प्रतिशत के मिश्रण का 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव को दोहराएँ।

3. सरसों का अंगमारी रोगः इस रोग से पत्तियां पर कत्थई भूरे रंग के उभरे हुए धब्बे दिखाई देते हैं, जिनके किनारे पीले रंग के होते हैं। देखने में यह धब्बे आँख की तरह प्रतीत होते हैं। उग्र अवस्था में यह धब्बे आपस में मिलकर बड़े हो जाते हैं, जिससे पत्तियाँ पीली हो कर झड़ने लगती हैं।

नियंत्रणः

- बीज को थायरम–75 डब्लू.पी 3 ग्राम या ट्राइकोड्रर्मा पाउडर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।
- 100 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद में 10 किलो ट्राइकोड्रर्मा हरजेनियम मिलाकर 15 दिन तक रखें व बुवाई से पहले खेत मे छिड़ककर हल्की सिंचाई कर दें।

4. सरसों का तुलासिता रोगः इस रोग के कारण पतियों की निचली सतह पर कपास की तरह उभरी हुई सफेद भूरी फफूँद दिखाई देती है, जिससे पत्तियों की निचली सतह पर हल्के भूरे बैंगनी धब्बे पड़ जाते हैं, जिसका ऊपरी भाग पीला पड़ जाता है, उग्र अवस्था मे तना व पुष्प क्रम अति वृद्धि के कारण फूल जाते हैं, फलियों में दाने नहीं बनते हैं। इस रोग का प्रकोप सफेद रोली के साथ दिखाई देता है तो फसल में ज्यादा नुकसान होता है।

नियंत्रणः

- सरसों की बुवाई अक्टुबर के पहले

[1]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ, [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, [4]सह. आचार्य, कृषि विज्ञान केन्द, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)–334006, [5]शोध छात्रा, कृषि महाविद्यालय, विभाग–शस्य विज्ञान, बीकानेर (राजस्थान)–334006

पखवाड़े में करें।

• बीजों को मेटालेक्सिल (एप्रोन एस. डी) 6 ग्राम या ट्राइकोड्रर्मा पाउडर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।

• फसल बुवाई के 2 माह बाद या रोग के लक्षण दिखाई देने पर रिडोमील एम. जेड 2 प्रतिशत का छिड़काव करें, आवश्यक हो तो छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर दोहराएं।

5. सरसों का स्केलेरोटीनिया तना सड़न रोग: यह रोग आज के समय मे सबसे खतरनाक रोग है। यह भूमि व बीज जनित रोग है। रोग के लक्षण सबसे पहले लम्बे धब्बों के रूप में तने पर दिखाई देते हैं, जिन पर कवक जाल के रूप में दिखाई देती है, उग्र अवस्था में तना फट जाता है व पौधा मुरझाकर सूख जाता है, संक्रमित भाग पर काले रंग के गोल कवक के स्केलेरोशिया दिखाई पड़ते हैं। अधिक नमी के दशा में रोग का प्रकोप ज्यादा होता है।

नियंत्रण:

• बीजों कोकार्बेन्डाजिम मेन्कोजेब (साफ) 2 ग्राम या ट्राइकोड्रर्मा पाउडर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।

• खड़ी फसल में बुवाई के 50–60 दिन बाद या रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 12 प्रतिशत मेन्कोजेब 63 प्रतिशत के मिश्रण का 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें व आवश्यकता पड़ने पर 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव को दोहराएँ।

• पौधों से पौधों व कतार से कतार की दूरी पर्याप्त रखें।

• रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

6. सरसों का छाछया रोग: यह एक कवक जनित रोग है, जो शुरूआती अवस्था में पौधे की पत्तियों व टहनियों पर मटमेले सफेद चूर्ण के रूप में दिखाई देती है। जो बाद में सम्पूर्ण पौधे पर फैल जाती है, जिसके कारण पत्तियाँ पीली होकर झड़ने लगती हैं।

नियंत्रण:

• इस रोग के नियंत्रण हेतु खड़ी फसल मे 20–25 किलोग्राम गंधक प्रति हेक्टेयर या 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक का छिड़काव करें या केराथियॉन–एल.सी का 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। आवश्कतानुसार 15 दिनों के बाद छिड़काव को फिर से दोहराएँ।

सरसों की फसल के मुख्य कीट:

1. चेंपा या माहू: सरसों में माहू पंखहीन या पंखयुक्त हल्के स्लेटी या हरे रंग के 1.5–3.0 मि.मी. लम्बे, चुभाने एवं चूसने वाले मुखांग वाले छोटे कीट होते हैं। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पौधों के कोमल तनों, पत्तियों, फूलों एवं नई फलियों से रस चूसकर उसे कमजोर एवं क्षतिग्रस्त तो करते ही हैं, साथ ही साथ रस चूसते समय पत्तियों पर मधुस्त्राव भी करते हैं। इस मधुस्त्राव पर काले कवक का प्रकोप हो जाता है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है। इस कीट का प्रकोप दिसम्बर–जनवरी से लेकर मार्च तक बना रहता है।

प्रबंधन: माहू के प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करें। प्रारम्भ में प्रकोपित शाखाओं को तोड़कर भूमि में गाड़ दें। जब फसल में कम से कम 10 प्रतिशत पौधे की संख्या चेंपा से ग्रसित हो व 26–28 चेंपा प्रति पौधा हो तब एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत एसपी 500 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल 150 मि.ली. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर में सायंकाल में छिड़काव करें। यदि दुबारा से कीट का प्रकोप हो तो 15 दिन के अंतराल से पुनः छिड़काव करें।

2. आरा मक्खी: इस मक्खी का धड़ नारंगी रंग का होता है। इसका सिर व पैर काले होते हैं। सूंडियों का रंग गहरा हरा होता है, जिनके ऊपरी भाग पर काले धब्बों की तीन कतारें होती हैं। इस कीड़े की सूंडियाँ फसल को उगते ही पत्तों को काट–काट कर खा जाती है। इसका अधिक प्रकोप अक्टूबर–नवम्बर में होता है।

प्रबंधन: गर्मियों की गहरी जुताई करें व सिंचाई करने पर भी इसका प्रकोप कम हो जाता है। इस कीट की रोकथाम हेतु मैलाथियॉन 50 ई.सी. 1.2 लीटर या डाईमेथोएट 30 ई.सी. 1.2 लीटर या थियामेथोक्सम 100 ग्राम 25 डब्लू जी को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें। आवश्यकता पडने पर दुबारा छिड़काव करें।

3. पेन्टेड बग कीट: पेन्टेड बग कीट का प्रकोप सरसों की फल के अंकुरण के तुरंत बाद होता है। फसल की 7–10 दिन छोटी अवस्था में यह कीट पत्तियों का रस चूसकर फसल को पूरी तरह नष्ट कर देता है। पेन्टेड बग कीट के शिशु और प्रौढ दोनों पत्तियों का रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। जिससे पौधे कमजोर व पीले पड़कर सूख जाते हैं।

प्रबंधन: सरसों फसल में शुरुआती अवस्था पर अगर पेन्टेड बग कीट का प्रकोप होता है तो डाईमिथोएट 30 ई. सी 1 लीटर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।

ऑर्गेनिक या जैविक खेती: एक सुरक्षित और संतुलित कृषि प्रणाली

पूजा कुमारी मीना', डॉ. जे. चौधरी, आशीष मीना, आंचल करोल, रुचिका चौधरी और लालचंद कुमावत

परिचय

ऑर्गेनिक खेती, फसल उत्पादन की एक प्राचीन और पारंपरिक पद्धति है, जिसे जैविक खेती भी कहा जाता है। इस पद्धति में फसलों के उत्पादन के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट, जीवाणु खाद, फसलों के अवशेष और प्रकृति में उपलब्ध विभिन्न खनिजों का उपयोग किया जाता है, जिससे पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि इस प्रकार की खेती में प्राकृतिक तत्वों को कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती न केवल पर्यावरण की शुद्धता को बनाए रखती है, बल्कि भूमि के प्राकृतिक स्वरूप को भी संरक्षित करती है। ऑर्गेनिक खेती का अभिप्राय एक ऐसी कृषि प्रणाली से है, जिसमें फसलों के उत्पादन के लिए रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं के बजाय जैविक या प्राकृतिक खादों का उपयोग किया जाता है।

आज के समय में किसी भी प्रकार की फसल के उत्पादन में कृषकों द्वारा विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थो का उपयोग किया जाता है। जिसके परिणाम स्वरुप उत्पादन की मात्रा तो बढ़ जाती है, परन्तु इससे भूमि की उपजाऊ शक्ति निरंतर कम होती जा रही है ।इसके साथ ही प्रतिदिन लोग नई–नई बीमारियों से ग्रसित होते जा रहे है इसके साथ ही पर्यारण संतुलन बिगड़ता जा रहा है हालाँकि जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा निरंतर प्रयास जारी है।

वर्तमान समय में, ऑर्गेनिक खेती से प्राप्त होने वाली उपज की मांग तेजी से बढ़ रही है, क्योंकि लोग स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति जागरूक हो रहे हैं। इस प्रकार की खेती न केवल सुरक्षित और स्वस्थ फसलें प्रदान करती है, बल्कि यह पारिस्थितिकी तंत्र को भी सहेजती है। इस प्रकार, ऑर्गेनिक खेती एक स्थायी कृषि विकल्प है, जो स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के लिए लाभकारी है। यह न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित खाद्य उत्पादन सुनिश्चित करती है।

भारत में जैविक खेती

भारत में जैविक खेती पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ी है। 2021–22 के आंकड़ों के अनुसार, भारत ने 3.1 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में जैविक खेती की है, जो इसे दुनिया के सबसे बड़े जैविक खेती वाले देशों में से एक बनाता है। भारत ने 2021–22 में लगभग 1.5 मिलियन टन जैविक उत्पादों का उत्पादन किया। जैविक उत्पादों का निर्यात भी बढ़ा है। 2020–21 में, भारत ने लगभग 1.3 बिलियन डॉलर का जैविक उत्पादों का निर्यात किया, जिसमें चाय, मसाले, और फल शामिल हैं।

- भारत के कुछ प्रमुख राज्य जो जैविक खेती में अग्रणी हैं:

मध्य प्रदेश – जैविक खेती का सबसे बड़ा क्षेत्रफल।

राजस्थान – सूखे क्षेत्रों में जैविक खेती के लिए प्रसिद्ध।

उड़ीसा – जैविक धान उत्पादन में प्रमुखता।

उत्तराखंड – जैविक फसलों के लिए उपयुक्त जलवायु।

- **पहला जैविक राज्य – सिक्किम**

सिक्किम भारत का पहला 100% जैविक राज्य है, जिसे ग्लोबल फ्यूच पॉलिसी अवार्ड से सम्मानित किया गया है। यहाँ रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग पूरी तरह से प्रतिबंधित है। सिक्किम में लगभग 66,000 किसान जैविक खेती से लाभान्वित हो चुके हैं। 2016 में पूर्व मुख्यमंत्री पवन कुमार चामलिंग ने रासायनिक खाद पर प्रतिबंध लगाते हुए उल्लंघन करने पर 1,00,000 रुपये का जुर्माना निर्धारित किया। सिक्किम जैविक खेती में एक प्रेरणास्रोत बन चुका है, जो वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त कर चुका है।

- **राजस्थान का पहला जैविक जिला**
  - डूंगरपुर
- **राजस्थान का पहला जैविक गांव**
  - दादिया गांव (जयपुर)

जैविक खेती कैसे करें

यदि आप ऑर्गेनिक खेती करना चाहते हैं, तो सबसे पहला कदम अपने खेत की मिट्टी की जाँच करवाना है। यह जाँच किसी भी निजी प्रयोगशाला या सरकारी कृषि विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में करवाई जा सकती है। इससे आपको यह जानकारी मिलती है कि मिट्टी में किस तत्व की कमी है। इस जानकारी के आधार पर, आप उपयुक्त खाद का उपयोग कर अपने खेत को अधिक उपजाऊ बना सकते हैं। जैविक खेती करने के लिए खेतों में रसायनिक और अन्य हानिकारक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद का इस्तेमाल किया जाता है।

✓ जैविक खाद बनाना

ऑर्गेनिक खेती के लिए पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद होना आवश्यक है। जैविक खाद का अर्थ है ऐसी खाद जो पशु मल–मूत्र (गोबर) और फसलों के अवशेषों से बनती है। आप खाद 3 से 6

सस्यविज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान – 313 001

माह में तैयार कर सकते है।

ऑर्गेनिक खाद को विभिन्न प्रकार से तैयार किया जाता है, जैसे– गोबर गैस खाद, हरी खाद, गोबर की खाद आदि। इस प्रकार की कम्पोस्ट को प्राकृतिक खाद भी कहते है, इसे बनानें की प्रक्रिया इस प्रकार है–

- **गोबर की खाद बनाने की प्रक्रिया**

गोबर की खाद एक उत्कृष्ट जैविक खाद है, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में मदद करती है। इसे बनाने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन करेंरू

आवश्यक सामग्री – पशुओं का गोबर, फसलों के अवशेष (जैसे: पत्तियां, तने), पशु मूत्र, पानी, प्लास्टिक शीट, मिट्टी

निर्माण प्रक्रिया – सबसे पहले, लगभग 1 मीटर चौड़ा, 1 मीटर गहरा, और 5 से 10 मीटर लंबा गड्ढा खोदें। गड्ढे के अंदर एक प्लास्टिक शीट फैलाएं। यह मिश्रण को सुरक्षित रखने में मदद करेगा। गड्ढे में फसलों के अवशेष, पशुओं का गोबर, पशु मूत्र और आवश्यकतानुसार पानी डालें। इन सभी सामग्रियों को अच्छे से

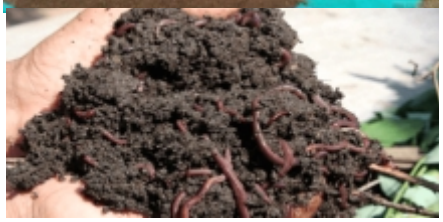

मिलाएं। मिश्रण को मिट्टी और गोबर से ढक दें ताकि हवा और धूप का प्रभाव कम हो। लगभग 20 दिनों के बाद, गड्ढे में पड़े मिश्रण को अच्छी तरह मिलाएं। यह प्रक्रिया ऑक्सीजन को मिलाने में मदद करती है और खाद को जल्दी तैयार करती है। लगभग 2 महीने के बाद, एक बार फिर से मिश्रण को मिलाएं और ढककर बंद कर दें। तीसरे महीने के अंत में, गोबर की खाद तैयार हो जाएगी। इसे आप अपनी आवश्यकता के अनुसार उपयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार, गोबर की खाद बनाना एक सरल और प्रभावी प्रक्रिया है, जो जैविक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- **वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ की खाद) बनाने की प्रक्रिया**

केंचुए को किसान का मित्र कहा जाता है, क्योंकि ये मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्मीकम्पोस्ट एक जैविक खाद है, जो कि केंचुओं द्वारा बनाई जाती है और यह मिट्टी को पोषण प्रदान करती है।

आवश्यक सामग्री – 2 से 5 किलो केंचुआ (जैसे: ऐसीनिया फोटिडा, पायरोनोक्सी एक्सक्वटा, एडिल्स), गोबर, नीम की पत्तियां, खेत की मिट्टी, प्लास्टिक शीट, पानी

निर्माण प्रक्रिया – वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए छायादार और नम वातावरण आवश्यक है। इसे घने छायादार पेड़ों के नीचे या छप्पर के नीचे बनाना बेहतर होता है। जल निकासी की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। एक लंबा गड्ढा खोदें, जिसमें आप सभी सामग्री डाल सकें। गड्ढे के अंदर एक प्लास्टिक शीट फैलाएं। यह मिश्रण को सुरक्षित रखने में मदद करेगी। गड्ढे में गोबर, खेत की मिट्टी, नीम की पत्तियां और केंचुआ डालें। सभी सामग्रियों को अच्छे से मिलाएं। सामग्री को मिलाने के बाद, आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करें ताकि मिश्रण नम बना रहे। केंचुए के लिए लगभग 45 से 60 दिन का समय लगेगा। इस दौरान, केंचुए मिट्टी को संसाधित करते हैं और वर्मीकम्पोस्ट तैयार करते हैं। 1 किलो केंचुआ एक घंटे में लगभग 1 किलो वर्मीकम्पोस्ट बना सकता है। यह खाद एंटीबायोटिक होती है, जो फसलों को विभिन्न बीमारियों से बचाती है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाना न केवल सरल है, बल्कि यह कृषि में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इससे न केवल मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है, बल्कि यह फसलों की गुणवत्ता में भी सुधार करता है।

- **हरी खाद (Green Compost) बनाने की प्रक्रिया**

ऑर्गेनिक खेती के लिए हरी खाद एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। यह मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के साथ–साथ फसलों के विकास में भी मदद करती है।

फसल – लोबिया, मुंग, उड़द, ढेचा (या अन्य हरी फसलें)

निर्माण प्रक्रिया – वर्षा के मौसम में, आपको अपने खेत में हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलों की बुवाई करनी चाहिए। लोबिया, मुंग, उड़द, और ढेचा जैसी फसलें विशेष रूप से अच्छे परिणाम देती हैं। चयनित फसलों की बुवाई करें और सुनिश्चित करें कि बीजों को सही गहराई पर और उचित मात्रा में लगाया गया है। इन फसलों को बढ़ने के लिए उचित जलवायु और मिट्टी की स्थिति सुनिश्चित करें। उचित पानी और सूरज की रोशनी मिलनी चाहिए। लगभग 40 से 60 दिन बाद, जब फसले बढ़कर तैयार हो जाएं, तो खेत की जुताई करें। जुताई के दौरान, इन फसलों को मिट्टी में मिला दें। इस प्रक्रिया से खेत को हरी खाद मिलती है, जो मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्वों को जोड़ती है। हरी खाद में नाइट्रोजन, गंधक, सल्फर, पोटाश, मैग्नीशियम, कैल्शियम, कॉपर, आयरन, और जस्ता जैसे महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। ये सभी तत्व मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

हरी खाद का उपयोग न केवल मिट्टी को समृद्ध बनाता है, बल्कि यह फसलों की वृद्धि को भी प्रोत्साहित करता है, जिससे आपको एक स्वस्थ और उपजाऊ खेत प्राप्त होता है।

✓ **जैविक कीटनाशी** (Bio-pesticides)

जैविक रसायन (बायो–पेस्टीसाइड) का निर्माण फफूँदी, बैक्टीरिया, विषाणु तथा वनस्पति पर आधारित कीटनाशी से फसलों, सब्जियों एवं फलों आदि को बचाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जैविक रसायन का स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर कोई भी दुष्प्रभाव नहीं होता है।

✓ **जैविक एजेन्ट (Bio-Agent)**

इसमें मुख्य रूप से परभक्षी (Predator) यथा प्रेइंग मेन्टिस, इन्द्र गोप भृंग, ड्रोगेन फ्लाई, किशोरी मक्खी, क्रिकेट (झींगुर), ग्राउन्ड बीटिल, मिडो ग्रासहापर, वाटर वग, मिरिड वग,क्राइसोपर्ला, जाइगोग्रामा बाइकोलोराटा, मकड़ी आदि एवं परजीवी (Parasite) यथा ट्राइकोग्रामा कोलिनिस, कम्पोलेटिस क्लोरिडी, एपैन्टेलिस, सिरफिड लाई, इपीरीकेनिया मेलानोल्यूका आदि कीटो से होने वाले फसल नुकसान से बचाने का कार्य करते हैं। यह कीटों एवं खरपतवार को खाते हैं। इसमें कुछ को लेबोरेटरी में पालकर खेतों में छोड़ा जाता है। परन्तु कुछ कीट ऐसे होते है जिनका प्रयोगशाला स्तर पर अभी पालन सम्भव नहीं हो पाया है, उन्हें खेत/फसल वातावरण में संरक्षित किया जाता है। बायो–एजेन्ट की गुणवत्ता एवं नियंत्रण प्रयोगशाला के द्वारा सुनिश्चित नहीं की जाती है।

ट्राइकोडरमा विरिडी /ट्राइकोडरमा हारजिएनम

ट्राइकोडरमा घुलनशील जैविक फफूँदीनाशक है। यह बाजार में आसानी से उपलब्ध होते है। ट्राइकोडरमा का इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के फसलों, फलों एवं सब्जियों में जड़, सड़न, तना सड़न डैम्पिंग आफ, उकठा, झुलसा आदि फफूँदजनित रोगों के लिए किया जाता है। ट्राइकोडरमा धान, गेंहूँ, दलहनी फसलें गन्ना, कपास, सब्जियों, फलों आदि में रोगो से बचाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसके कवक तंतु फफूंदी के कवकतंतुओं को लपेट कर या सीधे अन्दर जाकर उनको जड़ से खत्म कर देते हैं। इसके अलावा, ट्राइकोडरमा भोजन स्पर्धा के तहत विषाक्त पदार्थ का निर्माण करते हैं, जो बीजों/फलो के चारों ओर सुरक्षा दीवार बनाकर हानिकारक फफूंदी से सुरक्षित रखते हैं। बीजों का अंकुरण के समस्य ट्राइकोडरमा का इस्तेमाल बीजोपचार के लिए काफी फायदेमंद होता है।

• **ऑर्गेनिक या जैविक खेती के लाभ**

1. उर्वरक क्षमता में वृद्धि – ऑर्गेनिक खेती से भूमि की उर्वरक क्षमता में सुधार होता है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। यह मिट्टी को प्राकृतिक तरीके से समृद्ध करता है।

2. पर्यावरण की सुरक्षा – जैविक खेती से पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता, जिससे पारिस्थितिकी संतुलित रहती है। यह जलीय और स्थलीय जीवन को भी सुरक्षित रखता है।

3. पानी की बचत – रासायनिक खेती की तुलना में ऑर्गेनिक खेती में पानी की आवश्यकता कम होती है, जिससे जल संसाधनों का संरक्षण होता है।

4. लागत और लाभ – जैविक खेती में उत्पादन की लागत कम होती है, जबकि लाभ अधिक होता है। यह किसानों के लिए आर्थिक रूप से फायदेमंद है।

5. स्वास्थ्य लाभ – ऑर्गेनिक खेती से उत्पादित अनाज और फल–सब्जियों का सेवन करने से स्वास्थ्य संबंधी बीमारियों का खतरा कम होता है, क्योंकि इनमें रासायनिक अवशेष नहीं होते।

6. बाजार में मांग– पारंपरिक खेती की तुलना में जैविक उत्पादों की मांग अधिक होती है। इससे किसानों को अधिक आय प्राप्त होती है।

7. संवेदनशील जीवों का संरक्षण – ऑर्गेनिक खेती से कृषि के सहायक जीवों की सुरक्षा होती है, जो प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने में मदद करते हैं।

इन सभी लाभों के चलते, ऑर्गेनिक खेती न केवल एक पर्यावरणीय दृष्टिकोण से बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी एक बेहतर विकल्प साबित हो रही है।

निष्कर्ष

जैविक खेती एक सतत और पर्यावरण के अनुकूल कृषि प्रणाली है, जो रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग न करके प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करती है। यह मृदा की उर्वरता को बनाए रखने, जल स्रोतों को प्रदूषण से बचाने और जैव विविधता को संरक्षित करने में सहायक है। जैविक खेती से उत्पादित खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं और किसानों के लिए एक स्थिर और सुरक्षित आय का स्रोत बनते हैं। इसलिए, जैविक खेती न केवल पर्यावरण को बचाने में मदद करती है, बल्कि यह एक संतुलित और टिकाऊ कृषि प्रणाली के रूप में हमारे भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है।

फरवरी माह के उद्यानिकी कार्य

डॉ. बलबीर सिंह (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)

फल

इस वर्ष लगाये गये फलदार पौधों का सर्दी से बचाव करें। नये बगीचों में अन्तराशस्य के रूप में कुष्माण्डकुल की सब्जियों के अलावा अन्य सब्जियों की बुवाई करें। फलदार पौधों से निकले अवांछित फलांकुर व टहनियों को हटा देवें। पुराने व नये बगीचों की निराई–गुड़ाई करें व आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहे। फलदार पौधों में अच्छी बढ़वार के लिये ट्रैनिंग/प्रूनिंग करना नितान्त आवश्यक है।

आम– थांवलों की सफाई करें। निराई–गुड़ाई व आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। इस माह में नत्रजन की आधी मात्रा एक वर्ष के पौधे में 125 ग्राम, दो वर्ष के पौधें में 250 ग्राम, तीन वर्ष वाले पौधें में 375 ग्राम, चार वर्ष वाले पौधे में 500 ग्राम यूरिया प्रति पौधा के हिसाब से देवें।

अंगूर– बगीचों की देखभाल करें। बेलो की कटाई–छंटाई करते समय गत माह में बताई गई बातों का ध्यान रखें।

बेर– बीज द्वारा मूलवृन्त नर्सरी में तैयार करें। 25ग25 सेन्टीमीटर पोलिथीन की थैलियों में 1:1:1 के अनुपात में चिकनी मिट्टी, बलुई दोमट और गोबर की खाद का मिश्रण भर देवें। इसके बाद इन थैलियों में देशी बेर से निकाले गये बीजों की बुवाई फरवरी के अन्तिम सप्ताह से मार्च के द्वितीय सप्ताह तक कर देवें। बुवाई पूर्व बीजों को 2ग्राम कैप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। 7–10 दिन बाद बीजों का अंकुरण हो जाता है और लगभग 3–4 महिने में देशी पौध कलिकायन (बडिंग) योग्य हो जाती है।

नीबू– नीबू के पौधों को मूलवृन्त तैयार करने हेतु नर्सरी में बीजों की बुवाई करें। बुवाई पूर्व बीजों को 3 ग्राम थाईरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 8–10 सेन्टीमीटर तथा पौधों से पौधो की दूरी ढ़ाई से तीन सेन्टीमीटर रखते हुए क्यारियों में बुवाई करें तथा पौधो जब करीब 10–15 सेन्टीमीटर के हो जाये तब दूसरी क्यारियों में लगावे और जब मूलवृन्त एक वर्ष का हो जाये तब उन पर ही कलिकायन (बडिंग) करें।

फल पौधे लगाने का कार्य–

जहाँ सिंचाई की सुविधा हो तो वहाँ नीबू, अमरूद, अनार, बेर, आँवला आदि के पौधे इस माह में लगाये जा सकते है। इन पौधों के लगाने हेतु निम्नसारणी अनुसार गड्ढे खोदे व इनमें गोबर की खाद, सुपरफास्फेट एवं कीटनाशी दवा काम में लेवें।

फलदार पौधे का नाम	पौधे से पौधे की दूरी (मीटर)	गड्ढे का आकार (सेन्टीमीटर)	गोबर की खाद (किलो में)	सुपर फास्फेट (मिश्रण) (किलो में)	क्यूनॉलफास या एण्डोसल्फॉन चूर्ण (ग्राम)
अमरूद	6–7x6–8	60x60x60	25	–	50–100
नीबू	6–7 x 6–8	90x90x90	25	1.00	50–100
अनार	5 x 5	60x60x60	15–20	–	50–100
आँवला	8 x 8	100x100x 100	15–20	–	50–100
बेर	6–8	100x100x 100	20–25	1.5–2.00	50–100

सब्जियाँ

फूलगोभी–तैयर फलों को बाजार भेजें तथा पिछेती रोपी गई किस्मों की देखभाल करें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें।

बैंगन– बसंतकालीन फसल की देखभाल करें तथा फूल लगने के समय 20 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से देवें तथा सिंचाई करें।

वर्षाकालीन फसल की नर्सरी तैयार करें। नर्सर हेतु भूमि की अच्छी तरह खुदाई करके मिट्टी भुरभुरी बना लेवें तथा गोबर की सड़ी हुई खाद मिला देवें। एक हैक्टेयर में पौध रोपाई के लिये 400–500 ग्राम बीज पर्याप्त हेाता है। बीजो को बुवाई पूर्व 2 ग्राम थाईरम या कैप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। अगर सूत्रकृमि की समस्या हो तो 8–10 ग्राम कार्बोफ्यूरान 3 जी प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से भूमि में मिलावे। एक हैक्टेयर की पौध तैयार करने के लिये एक मीटर चौड़ी व तीन मीटर लम्बी सेन्टीमीटर की गहराई पर 2.5 सेन्टीमीटर के अन्तर पर कतारों में बुवाई करें। बुवाई के बाद बीज को गोबर की बारीक खाद की एक सेन्टीमीटर मोटी परत से ढक देवे और फौहारें से सिंचाई करें। नर्सरी में बीज बुवाई बाद खेत की तैयारी का कार्य शुरू करें। अन्तिम जुताई करते समय 150 क्विण्टल प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद भूमि में मिला देवें।

मिर्च– ग्रीष्मकालीन फसल हेतु नर्सरी तैयार करें। एक हैक्टेयर क्षेत्र हेतु एक से डेढ़ किलोग्राम बीज पर्याप्त हेाता है। बीजों को बुवाई पूर्व 2 ग्राम कैप्टान प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें तथा नर्सरी में 8–10 ग्राम काबफ्यिूरान 3 जी प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से मिलावें। नर्सरी में बुवाई के 4–5 सप्ताह बाद पौध रोपण योग्य हो जाती है। नर्सरी में बुवाई के बाद रोपण हेतु खेत की तैयारी भी शुरू करें।

टमाटर–गर्मी की फसल हेतु तैयार पौध की, खेत में रोपाई करें त्था पौधे लगाने से पूर्व देशी किस्मों में 60 किलो नत्रजन, 80 किलो फास्फोरस तथा 60 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से ऊर कर देवें। पौध रोपण के 30 किस्मों में 180 किलो नत्रजन, 130 किलो फास्फोरस तथा 80 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से ऊर कर देवें। पौध रोपण के 30 दिन व 50 दिन बाद 30–30 किलो नत्रजन खड़ी फसल में देवें। संकर किस्मों में 180 किलो नत्रजन, 130 किलो फास्फोरस तथा 80 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर देवें। कतार से कतार की दूरी 50 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 30–45 सेन्टीमीटर रखते हुए रोपाई करें।

भिण्डी– ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई करें। बीजों को 24 घण्टे भिगोने के बाद बुवाई करने पर अच्छा अंकुरण होता है। कतारों के बीच 30 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 15–20 सेन्टीमीटर रखते हुए भिण्डी की बुवाई की खाद प्रति हैक्टेयर भूमि में मिला देवें तथा 30 किलो नत्रजन बुवाई के एक माह बाद खड़ी फसल में देकर सिंचाई करें। 5–6 दिन के अन्तराल पर गर्मियों में सिंचाई करें।

मटर– तैयार फलियों को विक्रय हेतु भेजें। आवश्यकतानुसार पौध संरक्षण उपचार अपनाये एवं सिंचाई करें।

प्याज– रोपाई के 30–45 दिन बाद फसल में 50 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर देवें तथा सिंचाई करें।

मूली– तैयार मूली विक्रय हेतु बाजार भेजें तथा सिंचाई करें।

आलू– पिछेती बोयी गयी आलू की फसल की देखभाल करें। बुवाई के 30–35 दिन बाद 60–75 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर की दर से मिट्टी चढ़ाते समय देवें।

हरी पत्ती वाली सब्जियाँ–फसल की देखभाल करें आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें।

मसाले वाली फसलें

जीरा– बोई गई फसल की देखभाल करें। आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई–गुड़ाई करें तथा पौध संरक्षण उपाय अपनाये। बुवाई के 30–35 दिन बाद 15 किलो नत्रजन तथा 60 दिन बाद शेष 15 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर देवें तथा सिंचाई करें।

धनियाँ–आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें तथा 230 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर की दर से फसल में फूल आते समय देवें।

सौंफ– फसल की देखभाल कर एवं जैसे ही दानों का रंग हरे से पीला होने लगे उन गुच्छों को तोड़ लेना चाहिये तथा गुच्छों को साफ जगह पर छाया में सुखना चाहिये। सौंफ की उत्तम पैदावार के लिये सौंफ को पक कर अधिकतम पीला नही पड़ने देना चाहिये।

मेथी– फसल की देखभाल करें। आवश्यकतानुसार पौध संरक्षण उपाय अपनाये एवं सिंचाई करें।

लेखक अपने आलेख

dee@raubikaner.org /

rajeshvermasct@gmail.com

पर हिन्दी फोन्ट कृतिदेव 10 में वर्ड फाईल व पीडीएफ दोनों में भिजवाने का श्रम करें।

फरवरी माह के कृषि कार्य

डॉ. विजय प्रकाश, निदेशक अनुसंधान
स्वा. के. रा. कृ. वि., बीकानेर

गेहूँ :
समय पर बोई गई फसल में तीसरी सिंचाई, दूसरी सिंचाई के 25–30 दिन बाद (गांठ बनने की अवस्था पर) देवें तथा चौथी सिंचाई तीसरी सिंचाई के 15–20 दिन बाद (बाली आने पर) देवें।
पछेती बोई गई गेहूँ की फसल में दूसरी सिंचाई, प्रथम सिंचाई के 25–30 दिन बाद (फूटान के समय) देवें।
पछेती बोई गई गेहूँ में अगर आवश्यकता हो तो दूसरी सिंचाई के बाद बत्तर आने पर कसिये या हैंड हो से निराई–गुड़ाई करें।

चना:
दूसरी सिंचाई बुवाई के 90–100 दिन बाद (फली आने पर) देवें।
चने की हरी सुण्डी के प्रकोप से बचाने के लिए एन.पी. वी. का 112 लटों का समतुल्य प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें या नीम सीड करनैल एक्ट्रेक्ट 5 प्रतिशत का छिड़काव करें।
अधिक सर्दी पर पीले व गैरुंए पडे चने की फसल में एन. पी.के. विलयन के 1 प्रतिशत घोल का बारानी क्षेत्रों में फूल आने की अवस्था पर छिड़काव करने से फसल की उपज में वृद्धि होती है।
मृदा में जिंक की कमी होने पर या खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण प्रकट होने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट एवं 0.25 प्रतिशत बुझा चूना के हिसाब से छिड़काव करें।
चने की फसल में फली छेदक कीट के नियन्त्रण के लिए 50 प्रतिशत फूल बनते समय इण्डोक्साकार्ब 14.5 एस. सी. की 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें तथा द्वितीय छिड़काव फलियों में दाने बनते समय क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल 18.5 एस.सी. की 0.28 मिली मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सरसों :
झुलसा रोग के भूरे गोल छल्लेदार धब्बे दिखाई पड़ने पर मैन्कोजेब (75 डब्ल्यू पी) या कॉपर आक्सीक्लोराइड का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 10–12 दिन बाद दोहराये।
सरसों की फसल को पकाव के समय सूखे के प्रकोप से बचाने हेतु 100 लीटर पानी में 1 किलो पोटेशियम नाईट्रेट का घोल बनाकर फसल की फूल वाली अवस्था एवं फली वाली अवस्था पर एक–एक छिड़काव करें।

जौं :
दूसरी सिंचाई बुवाई के 65–70 दिन बाद करें व तीसरी सिंचाई बुवाई के 100–110 दिन बाद करें।
दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. का 2.5 से 3 लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. की 300 मिली मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ देवें।

गन्ना :
जिस खेत में गन्ने की मोढी रखनी हो उसे इकट्ठा कर जला देना चाहिए जिससे खेत में उपस्थित कीट आदि खत्म हो जाए तथा गन्ने की फुटान भी अच्छी हो।

किन्नो :
गोंदाति रोग (गमोसिस) ग्रसित पौधों में मेटालेक्सिल एवं मेनकोजेब (रिडोमिल गोल्ड) 25 ग्राम 40–45 लीटर पानी में घोलकर पौधों की जड़ों को भिगो देवें अथवा ट्राईकोडरमा हरजैनियम की पाउडर आधारित 60 ग्राम मात्रा प्रति पौधे के हिसाब से जड़ के चारों तरफ खुरपी से मिट्टी में मिला देवें। उपचार 15 दिन के अंतराल पर दोहरावें। पिछले माह में यदि गोबर की खाद तथा पोटाश न डाल सकें हो तो इस माह के प्रथम सप्ताह तक अवश्य डालें।

- खजूर में परागण का कार्य करें।
- फलदार पौधे लगाने का कार्य करें।
- कद्दु कुल की सब्जियां लगाएं।
- टमाटर, मिर्च, बैंगन की पौध तैयार करें व रोपित करें।

Printed and published by Dr. P. K. Yadav on behalf of Nidesak Prasar Shiksha and Printed at M/s Kishan Enterprises, Magaram Colony, Outside Jassusar Gate, Bikaner and published at Swami Keshwanand Rajasthan Agricultural University, Bikaner, Editor : Prof. Rajesh Kumar Verma.